बारह भावना

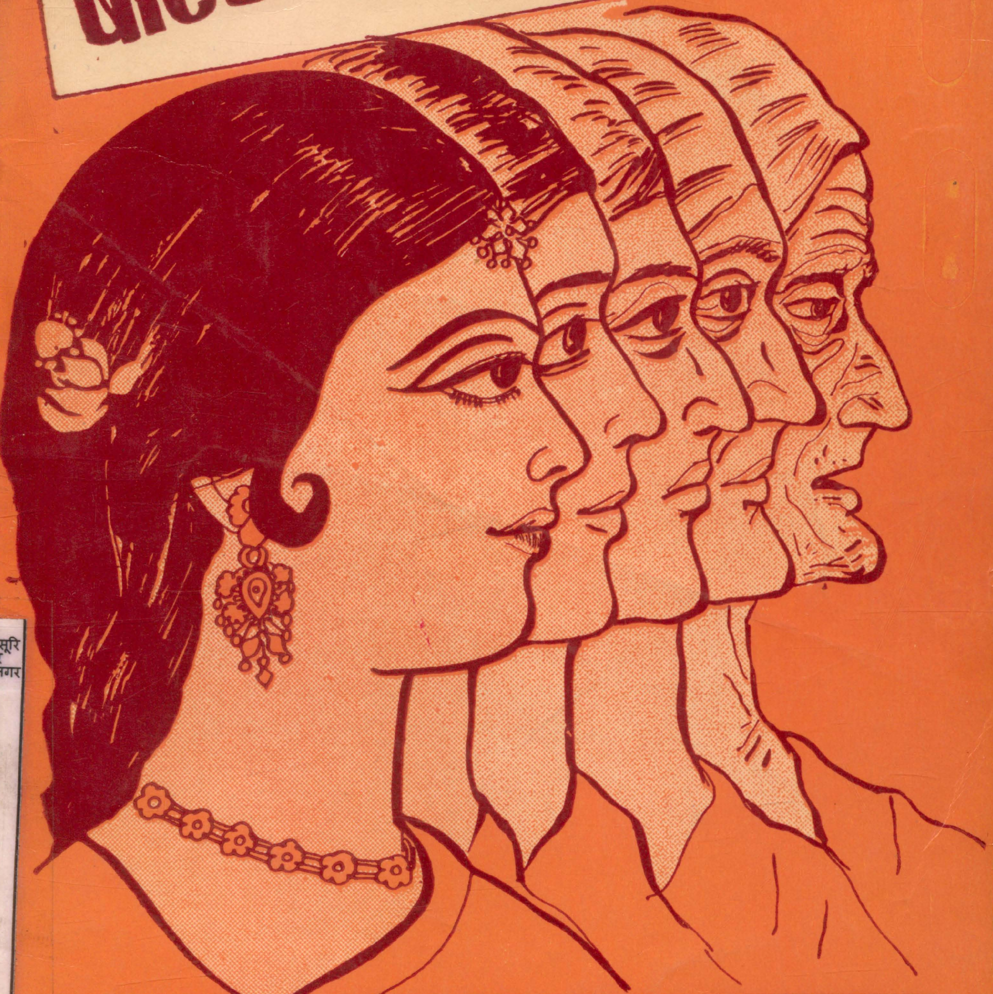

अंजुली-जल सम जवानी क्षीण होती जा रही ।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही ॥
काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मँडरा रही ।
किन्तु पल-पल विषय-तृष्णा तरुण होती जा रही ॥

डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

बारह भावना

लेखक :

© डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम०ए०, पीएच०डी०
श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

प्रथमावृत्ति : १०,०००
२६ जनवरी, १९८५ ई०
द्वितीयावृत्ति : १०,०००
३ अप्रेल, १९८५ (महावीर जयन्ती)
तृतीय आवृत्ति : ५२००

मूल्य :
एक रुपया

कैसेट के रूप में भी

ये पद्यमय बारह भावनायें और 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' आत्मगीत श्रीमती कनकप्रभा हाड़ा और श्री राजीव भट्ट के मधुर स्वर में आवश्यक वाद्ययन्त्रों के साथ कैसेट के रूप में भी उपलब्ध हैं। इस एक घण्टे के कैसेट की कीमत ११) रुपये मात्र है।

— कैसेट विभाग,
अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन
ए–४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५

मुद्रक : सिटीजन प्रिंटर्स

विषय-सूची

		पृष्ठ
१.	अनित्यभावना	५
२.	अशरणभावना	७
३.	संसारभावना	९
४.	एकत्वभावना	११
५.	अन्यत्वभावना	१३
६.	अशुचिभावना	१५
७.	आस्रवभावना	१७
८.	संवरभावना	१९
९.	निर्जराभावना	२१
१०.	लोकभावना	२३
११.	बोधिदुर्लभभावना	२५
१२.	धर्मभावना	२७

अनित्यभावना

सम्पूर्ण संयोग सूर्योदयकालीन स्वर्णिम छटा के समान क्षणभंगुर हैं। इसीप्रकार पुण्योदय से प्राप्त भोग भी कमल के पत्तों पर पड़े हुए जलबिन्दुओं के समान क्षणभंगुर ही हैं। भाग्यशाली ललाट की लालिमा भी सायंकालीन सूर्य की लालिमा के समान अल्पकाल में ही कालिमा में वदल जानेवाली है; क्योंकि सभी संयोगों पर, भोगों पर, पर्यायों पर विकराल काल की विकट मनहूस छाया पड़ी हुई है ।।१।।

यह उन्मत्त यौवन अंजुली के जल के समान प्रतिपल क्षीण होता जा रहा है और देह को जर्जर कर देनेवाला बुढ़ापा निरन्तर नजदीक आता जा रहा है। मृत्यु की काली घटाएँ प्रत्येक क्षण शिर पर मँडरा रही हैं, फिर भी पंचेन्द्रिय विषयों की तृष्णा निरन्तर बढ़ती जा रही है, जवान होती जा रही है ।।२।।

यह दुःखमयी पर्याय क्षणभंगुर है, अतः सदा कैसे रह सकती है और ध्रुवस्वभावी अमर आत्मा मृत्यु का वरण कैसे कर सकता है? न तो यह दुःखमय पर्याय ही सदा रहनेवाली है और न अमर आत्मा कभी मरनेवाला ही है। ध्रुवधाम आत्मा से विमुख पर्याय ही वस्तुतः संसार है और ध्रुवधाम आत्मा की आराधना ही आराधना का सार है ।।३।।

संयोग क्षणभंगुर हैं और आत्मा त्रिकाली ध्रुवधाम है, पर्याय नाशवान है और आत्मा शाश्वत रहनेवाला है। इस सत्य को पहिचान लेना ही अनित्यभावना का सार है और त्रिकाली ध्रुवधाम निज आत्मा की आराधना ही वास्तविक आराधना है, आराधना का सार है ।।४।।

अनित्यभावना

(१)

मोर की स्वर्णिम छटा सम क्षणिक सब संयोग हैं।
पद्मपत्रों पर पड़े जलबिन्दु सम सब भोग हैं॥
सान्ध्य दिनकर लालिमा सम लालिमा है भाल की।
सब पर पड़ी मनहूस छाया विकट काल कराल की ॥१॥

(२)

अंजुली-जल सम जवानी क्षीण होती जा रही।
प्रत्येक पल जर्जर जरा नजदीक आती जा रही॥
काल की काली घटा प्रत्येक क्षण मँडरा रही।
किन्तु पल-पल विषय-तृष्णा तरुण होती जा रही ॥२॥

(३)

दुखमयी पर्याय क्षणभंगुर सदा कैसे रहे?
अमर है ध्रुव आतमा वह मृत्यु को कैसे वरे?
ध्रुवधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥३॥

(४)

संयोग क्षणभंगुर सभी पर आतमा ध्रुवधाम है।
पर्याय लयधर्मा परन्तु द्रव्य शाश्वत धाम है॥
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ॥४॥

अशरणभावना

एक तो छेदवाली नाव हो, मझधार में बह रही हो और वह भी दुर्भाग्य से दुर्दैव के अधिकार में पड़ गई हो; जब नाविक ही उसे मँझधार में डुबाने को तैयार हो तो फिर उसे कौन बचा सकता है ? अतः यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सभी संयोग अशरण हैं, इस संसार में कोई शरण नहीं है ।।१।।

यह जीवन जबतक है, तबतक ही है; इसका एक पल भी कोई बढ़ा नहीं सकता; जब मौत आ जायगी तो न तो रस-रसायन ही बचा पायेंगे और न सुत (पुत्र), न सुभट अथवा न सुभट-सुत । व्यवहार से कुछ भी कहो, पर सत्य बात तो यही है कि जीवन-मरण अशरण है, संसार में कोई भी शरण नहीं है ।।२।।

निश्चय से विचार करो तो एक अपना आत्मा ही शरण है, पर व्यवहार से पंचपरमेष्ठी को भी शरण कहा जाता है । इन्हें छोड़कर जो अन्य की शरण खोजता है, अन्य की शरण में जाता है; वह आत्मा बहिरात्मा है, मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है । ध्रुवधाम से विमुख पर्याय ही वस्तुतः संसार है और ध्रुवधाम की आराधना ही आराधना का सार है ।।३।।

सभी संयोग अशरण हैं और ध्रुवधाम निज आत्मा ही परमशरण है । पर्याय का स्वभाव ही नाशवान है, किन्तु द्रव्य अविनाशी है । इस सत्य को पहिचानना ही अशरणभावना का सार है और ध्रुवधाम निज भगवान आत्मा की आराधना ही वास्तविक आराधना है, आराधना का सार है ।।४।।

अशरणभावना

(५)

छिद्रमय हो नाव डगमग चल रही मझधार में।
दुर्भाग्य से जो पड़ गई दुर्दैव के अधिकार में॥
तब शरण होगा कौन जब नाविक डुबा दे धार में।
संयोग सब अशरण शरण कोई नहीं संसार में॥१॥

(६)

जिन्दगी इक पल कभी कोई बढ़ा नहीं पायगा।
रस रसायन सुत सुभट कोई बचा नहीं पायगा॥
सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार में।
जीवन-मरण अशरण शरण कोई नहीं संसार में॥२॥

(७)

निज आत्मा निश्चय-शरण व्यवहार से परमातमा।
जो खोजता पर की शरण वह आतमा बहिरातमा॥
ध्रुवधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥३॥

(८)

संयोग हैं अशरण सभी निज आतमा ध्रुवधाम है।
पर्याय व्ययधर्मा परन्तु द्रव्य शाश्वत धाम है॥
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४॥

संसारभावना

संयोगों के लक्ष्य से आत्मा में उत्पन्न होनेवाली दुःखमय, मलिन और सम्पूर्णतः निस्सार चिद्वृत्तियाँ (विकारी भाव) ही वास्तविक संसार है; जगजालमय चतुर्गतिभ्रमण को भी संसार कहा जाता है। भ्रमरोग (मिथ्यात्व-अज्ञान) के वश होकर भव-भव में परिभ्रमण ही संसार का मूल आधार है ॥१॥

अनुकूल संयोगों की प्राप्ति होने पर भी संसार में सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं है। अनुकूल संयोगों की प्राप्ति को सुख मात्र व्यवहार से ही कहा जाता है। वास्तव में तो सभी संयोग संसार के फन्द ही हैं, फन्दे में फँसानेवाले ही हैं और मानसिक द्वन्द्वरूप चिद्वृत्तियाँ भी दुःखरूप ही हैं। आनन्द का रसकन्द तो एकमात्र अपना आत्मा ही है, शेष सब तो दंद-फंद ही हैं ॥२॥

जिसप्रकार जल का मंथन चाहे रात-दिन ही क्यों न करें, पर उसमें से घी की प्राप्ति सम्भव नहीं है; इसीप्रकार रेत को रात-दिन ही क्यों न पेलें, पर उसमें से तेल का निकलना सम्भव नहीं है तथा जिसप्रकार सद्भाग्य के बिना व्यापार में सम्पत्ति की प्राप्ति संभव नहीं है; उसीप्रकार निज आत्मा को जाने बिना संसार में सुख की प्राप्ति सम्भव नहीं है ॥३॥

संसार तो मात्र अध्रुव पर्याय में है, निज ध्रुवधाम आत्मा में नहीं है। यद्यपि संसार संकटमय है, तथापि आत्मा तो सुख का धाम ही है। इस सुख के धाम आत्मा से जो पर्याय विमुख है, वही पर्याय वस्तुतः संसार है; और ध्रुवधाम निज भगवान आत्मा की आराधना ही आराधना का सार है ॥४॥

संसारभावना

(९)

दुखमय निरर्थक मलिन जो सम्पूर्णतः निस्सार है ।
जगजालमय गति चार में संसरण ही संसार है ।।
भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण संसार का आधार है ।
संयोगजा चिद्वृत्तियाँ ही वस्तुतः संसार है ।।१।

(१०)

संयोग हों अनुकूल फिर भी सुख नहीं संसार में ।
संयोग को संसार में सुख कहें बस व्यवहार में ।।
दुख-द्वन्द हैं चिद्वृत्तियाँ संयोग ही जगफन्द है ।
निज आतमा बस एक ही आनन्द का रसकन्द है ।।२।।

(११)

मंथन करे दिन-रात जल घृत हाथ में आवे नहीं ।
रज-रेत पेले रात-दिन पर तेल ज्यों पावे नहीं ।।
सद्भाग्य बिन ज्यों संपदा मिलती नहीं व्यापार में ।
निज आतमा के भान बिन त्यों सुख नहीं संसार में ।।३।।

(१२)

संसार है पर्याय में निज आतमा ध्रुवधाम है ।
संसार संकटमय परन्तु आतमा सुखधाम है ।।
सुखधाम से जो विमुख वह पर्याय ही संसार है ।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ।।४।।

एकत्वभावना

निज भगवान आत्मा आनन्द का रसकन्द, ज्ञान का घनपिण्ड एवं शान्ति का सागर है। एक आत्मा को छोड़कर शेष सभी द्रव्य जड़ हैं। इस संसार में यह आत्मा जीवन-मरण और सुख-दुःख को अकेले ही भोगता है और नरक, निगोद, स्वर्ग या मोक्ष में भी अकेला ही जाता है ।।१।।

बहिरात्मा अज्ञानी जीव उक्त तथ्य से अपरिचित ही रहते हैं। जो आत्मा उक्त सत्य या निजात्मतत्त्व को पहिचानते हैं, वे ही विवेकी ज्ञानी हैं। जो जीव निजात्मतत्त्व को पहिचानकर, जानकर निज में ही जम जाते हैं, रम जाते हैं; वे भव्यजीव पर्याय में भी परमात्मा बन जाते हैं ।।२।।

व्यवहार में कुछ भी क्यों न कहा जाय, पर सत्यार्थ बात तो यही है। संसार में संयोग तो सर्वत्र पाये जाते हैं, पर सगा साथी कोई नहीं मिलता। संयोगों की आराधना – चाह, महिमा ही संसार का कारण है, आधार है; और निज एकत्व की आराधना ही आराधना का सार है ।।३।।

एकत्व ही सत्य है, एकत्व ही सुन्दर है और एकत्व ही कल्याणकारी है; सुख, शान्ति और स्वाधीनता एकत्व के आश्रय से ही प्रकट होती है; क्योंकि इनका आवास एकत्व में ही है। एकत्वभावना का सार तो एकत्व को पहिचानने में ही है; और एकत्व की आराधना ही आराधना का सार है ।।४।।

एकत्वभावना

(१३)

आनन्द का रसकन्द सागर शान्ति का निज आतमा ।
सब द्रव्य जड़ पर ज्ञान का घनपिण्ड केवल आतमा ॥
जीवन-मरण सुख-दुख सभी भोगे अकेला आतमा ।
शिव-स्वर्ग नर्क-निगोद में जावे अकेला आतमा ॥१॥

(१४)

इस सत्य से अनभिज्ञ ही रहते सदा बहिरातमा ।
पहिचानते निजतत्त्व जो वे ही विवेकी आतमा ॥
निज आतमा को जानकर निज में जमे जो आतमा ।
वे भव्यजन बन जायेंगे पर्याय में परमातमा ॥२॥

(१५)

सत्यार्थ है बस बात यह कुछ भी कहो व्यवहार में ।
संयोग हैं सर्वत्र पर साथी नहीं संसार में ॥
संयोग की आराधना संसार का आधार है ।
एकत्व की आराधना आराधना का सार है ॥३॥

(१६)

एकत्व ही शिव सत्य है सौन्दर्य है एकत्व में ।
स्वाधीनता सुख शान्ति का आवास है एकत्व में ॥
एकत्व को पहिचानना ही भावना का सार है ।
एकत्व की आराधना आराधना का सार है ॥४॥

अन्यत्वभावना

जिस देह में यह आत्मा रहता है, जब वह एकक्षेत्रावगाही देह भी आत्मा से भिन्न है तो जो क्षेत्र से भिन्न हैं, उनकी क्या बात करें ? वे तो सर्वथा भिन्न हैं ही । नगरवासी, कुटुम्बीजन, भाई-बहिन, माँ-बाप, पति या पत्नी, धन-धान्य एवं मकान आदि सभी आत्मा से भिन्न ही हैं ।।१।।

छोटे-बड़े भाई, पुत्र-पुत्री, प्रिय मित्रजन आदि सभी तो आत्मा से भिन्न हैं ही, पर पर के लक्ष्य से आत्मा में ही उत्पन्न होनेवाली शुभाशुभ-भावरूप तथा स्वलक्ष्य से उत्पन्न होनेवाली शुद्धभावरूप वृत्तियाँ भी आत्मा से अन्य ही हैं, भिन्न ही हैं; चेतन्मय ध्रुव आत्मा तो गुणभेद से भी भिन्न परमपदार्थ है ।।२।।

यह गुणभेद से भी भिन्न परमपदार्थ आनन्द का कन्द, ज्ञान का घनपिण्ड एवं अनन्त शक्तियों का संग्रहालय है । वह परमपदार्थ साध्य भी है, आराध्य भी है और आराधना का सार भी वही है । ध्रुवधाम निज भगवान आत्मा की आराधना का एकमात्र आधार वही परमपदार्थ निज आत्मा है ।।३।।

जो जीव इस सत्य को जानते हैं, वे ही विवेकी हैं, वे ही धन्य हैं; क्योंकि ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ और है । अन्यत्वभावना का सार आत्मा का पर से भिन्नत्व पहिचानना ही है एवं अखण्ड एक आत्मा की आराधना ही आराधना का सार है ।।४।।

अन्यत्वभावना

(१७)

जिस देह में आतम रहे वह देह भी जब भिन्न है।
तब क्या करें उनकी कथा जो क्षेत्र से भी अन्य हैं।।
हैं भिन्न परिजन भिन्न पुरजन भिन्न ही धन-धाम हैं।
हैं भिन्न भगिनी भिन्न जननी भिन्न ही प्रिय वाम है।।१।।

(१८)

अनुज-अग्रज सुत-सुता प्रिय सुहृद जन सब भिन्न हैं।
ये शुभ अशुभ संयोगजा चिद्वृत्तियाँ भी अन्य हैं।।
स्वोन्मुख चिद्वृत्तियाँ भी आतमा से अन्य हैं।
चैतन्यमय ध्रुव आतमा गुणभेद से भी भिन्न है।।२।।

(१९)

गुणभेद से भी भिन्न है आनन्द का रसकन्द है।
है संग्रहालय शक्तियों का ज्ञान का घनपिण्ड है।।
वह साध्य है आराध्य है आराधना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना का एक ही आधार है।।३।।

(२०)

जो जानते इस सत्य को वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है।।
अन्यत्व को पहिचानना ही भावना का सार है।
एकत्व की आराधना आराधना का सार है।।४।।

अशुचिभावना

हे आत्मन् ! जिस देह को अपना जानकर, अपना मानकर तू उसमें दिन-रात रम रहा है, रच-पच रहा है; जिस देह में तूने एकत्व स्थापित कर रखा है और जिस देह में तेरा इतना अनुराग है; उस देह में क्या-क्या भरा है ? – इस बात का विचार क्या तूने कभी एक क्षण भी किया है ? ।।१।।

जिस देह में निज भगवान आत्मा रहता है, उस देह का वास्तविक स्वरूप क्या है, रूप क्या है ? – इस बात का विचार भी तूने कभी किया ? यह देह अत्यन्त मलिन मल-मूत्र, खून-माँस, पीप एवं चर्बी का घर है। यद्यपि यह शरीर जड़रूप है, तथापि इसमें चैतन्यभगवान आत्मा विराजमान है ।।२।।

इस दुर्गन्धमय शरीर में चैतन्य भगवान रहते हैं, इस मैली-कुचैली जेल में शुद्धात्मा का आवास है। पवित्र से भी पवित्र जो वस्तु इस मलिन देह के संयोग में एक क्षण को भी आवेगी; वह भी मलिन हो जावेगी, मल-मूत्र-मय हो जावेगी, दुर्गन्धमय हो जावेगी ।।३।।

किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इस महामलिन देह में रहकर भी यह भगवान आत्मा सदा निर्मल ही रहा है। यह निर्मल आत्मा ही परमज्ञेय है – परमशुद्धनिश्चयनय का विषय है, परमभावग्राहीशुद्धद्रव्यार्थिक नय का विषय है; श्रद्धेय है – दृष्टि का विषय है और वह भगवान आत्मा ही ध्यान का विषय है, ध्येय है। अशुचिभावना का सार उक्त भगवान आत्मा की साधना ही है; और ध्रुवधाम निज भगवान आत्मा की आराधना ही आराधना का सार है ।।४।।

अशुचिभावना

(२१)

जिस देह को निज जानकर नित रम रहा जिस देह में।
जिस देह को निज मानकर रच-पच रहा जिस देह में॥
जिस देह में अनुराग है एकत्व है जिस देह में।
क्षण एक भी सोचा कभी क्या-क्या भरा उस देह में॥१॥

(२२)

क्या-क्या भरा उस देह में अनुराग है जिस देह में।
उस देह का क्या रूप है आतम रहे जिस देह में॥
मलिन मल पल रुधिर कीकस वसा का आवास है।
जड़रूप है तन किन्तु इसमें चेतना का वास है॥२॥

(२३)

चेतना का वास है दुर्गन्धमय इस देह में।
शुद्धातमा का वास है इस मलिन कारागेह में॥
इस देह के संयोग में जो वस्तु पलभर आयगी।
वह भी मलिन मल-मूत्रमय दुर्गन्धमय हो जायगी॥३॥

(२४)

किन्तु रह इस देह में निर्मल रहा जो आतमा।
वह ज्ञेय है श्रद्धेय है बस ध्येय भी वह आतमा॥
उस आतमा की साधना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४॥

आस्रवभावना

संयोग के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली चैतन्य की राग-द्वेषरूप वृत्तियाँ भ्रम का कुँआ है, आस्रवभावरूप हैं, दुःखस्वरूप हैं, दुःख की कारण हैं, मलिन हैं, जड़ हैं, अशरण हैं और संयोगों से रहित भगवान आत्मा परम पवित्र है, परमशरण है, चैतन्यरूप है, भ्रमरोग को हरण करनेवाला, संतोष करनेवाला, सुख करनेवाला और आनन्दरूप है ।।१।।

आत्मा और आस्रव के इस भेद को नहीं जानना मोहरूपी मदिरा का पान करना है और दोनों के भेद को पहिचान लेना ही आत्मा का सच्चा ज्ञान है । इस भेद को नहीं पहिचानना ही संसार का मूल कारण है । इस भेद की निरन्तर भावना ही संसार समुद्र का किनारा है ।।२।।

बहिरात्मा जीव इस भेद से सदा अनभिज्ञ ही रहते हैं और जो इस भेद (रहस्य) को जानते हैं, वे ही विवेकी जीव हैं । इस रहस्य को जानकर, पहिचानकर जो आत्मा अपने में जम जायेंगे, रम जायेंगे; वे भव्यजन पर्याय में भी परमात्मा बन जायेंगे ।।३।।

शुभाशुभ सम्पूर्ण आस्रव हेय है और अपना शुद्धात्मा श्रद्धेय है, ध्येय है, निश्चय से ज्ञेय भी वही है, परमप्रिय एवं श्रेष्ठ भी वही है । इस सत्य को पहिचानना ही आस्रवभावना का सार है; और ध्रुवधाम निज भगवान आत्मा की आराधना ही आराधना का सार है ।।४।।

आस्रवभावना

(२५)

संयोगजा चिद्वृत्तियाँ भ्रमकूप आस्रवरूप हैं।
दुखरूप हैं दुखकरण हैं अशरण मलिन जड़रूप हैं॥
संयोग विरहित आतमा पावन शरण चिद्रूप है।
भ्रमरोगहर संतोषकर सुखकरण है सुखरूप है॥१॥

(२६)

इस भेद से अनभिज्ञता मद मोह मदिरा पान है।
इस भेद को पहिचानना ही आत्मा का भान है॥
इस भेद की अनभिज्ञता संसार का आधार है।
इस भेद की नित भावना ही भवजलधि का पार है॥२॥

(२७)

इस भेद से अनभिज्ञ ही रहते सदा बहिरातमा।
जो जानते इस भेद को वे ही विवेकी आतमा॥
यह जानकर पहिचानकर निज में जमे जो आतमा।
वे भव्यजन बन जायेंगे पर्याय में परमातमा॥३॥

(२८)

हैं हेय आस्रवभाव सब श्रद्धेय निज शुद्धातमा।
प्रिय ध्येय निश्चय ज्ञेय केवल श्रेय निज शुद्धातमा॥
इस सत्य को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४॥

संवरभावना

यह भगवान ग्रात्मा यद्यपि देहरूपी मन्दिर में रहता है, पर देह से भिन्न ही है। इसीप्रकार रागादि विकारीभाव इसमें ही उत्पन्न होते हैं, पर यह उनसे भी भिन्न है। अधिक क्या कहें ? अनन्त गुणवाला होने पर भी यह ग्रात्मा गुणभेद से भिन्न एवं निर्मल पर्यायों से भी पार है। साधकों की साधना का एकमात्र ग्राधार भी यही शुद्धात्मा है ।।१।।

ऐसा शुद्धात्मा ग्रौर कोई नहीं, मैं ही हूँ। चैतन्यरूपी सूर्य, ग्रानन्द का कन्द ग्रौर ज्ञान का घनपिण्ड ग्रात्मा मैं ही हूँ। मैं ही ध्यान का ध्येय, श्रद्धान का श्रद्धेय, परमज्ञान का ज्ञेय हूँ। मात्र ज्ञेय ही नहीं, ज्ञान भी मैं ही हूँ। बस, मैं तो एक ज्ञायकभाव ही हूँ। अधिक क्या कहूँ ? मैं स्वयं भगवान हूँ ।।

यह जानना ही सम्यग्ज्ञान है, यह पहिचानना ही सम्यग्दर्शन है ग्रौर मात्र अपनी साधना अपनी ग्राराधना ही सम्यक्चारित्र है, ध्यान है। यह ज्ञान-श्रद्धान एवं यही साधना-ग्राराधना ही संवरतत्त्व है, संवरभावना है ।।३।।

जो जीव इस सत्य को जानते हैं, पहिचानते हैं; वे ही विवेकी हैं, वे ही धन्य हैं; क्योंकि ध्रुवधाम निज भगवान के ग्राराधकों की बात ही कुछ ग्रौर होती है, गजब की होती है। संवरभावना का सार शुद्धात्मा को जानना ही है, ग्रौर ध्रुवधाम निज भगवान की ग्राराधना ही ग्राराधना का सार है ।।४।।

संवरभावना

(२९)

देहदेवल में रहे पर देह से जो भिन्न है।
है राग जिसमें किन्तु जो उस राग से भी अन्य है ।।
गुणभेद से भी भिन्न है पर्याय से भी पार है।
जो साधकों की साधना का एक ही आधार है ।।१।।

(३०)

मैं हूँ वही शुद्धात्मा चैतन्य का मार्तण्ड हूँ।
आनन्द का रसकन्द हूँ मैं ज्ञान का घनपिण्ड हूँ ।।
मैं ध्येय हूँ श्रद्धेय हूँ मैं ज्ञेय हूँ मैं ज्ञान हूँ।
बस एक ज्ञायकभाव हूँ मैं मैं स्वयं भगवान हूँ ।।२।।

(३१)

यह जानना पहिचानना ही ज्ञान है श्रद्धान है।
केवल स्वयं की साधना आराधना ही ध्यान है ॥
यह ज्ञान यह श्रद्धान बस यह साधना आराधना।
बस यही संवरतत्त्व है बस यही संवरभावना ।।३।।

(३२)

इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है ।।
शुद्धातमा को जानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है ।।४।।

निर्जराभावना

शुद्धात्मा की रुचि संवर और शुद्धात्मा की साधना निर्जरा है। वास्तव में देखा जाय तो ध्रुवधाम निज भगवान आत्मा की आराधना ही निर्जरा है। ममता रहित निर्मल दशा ही निर्जरा है। इसीप्रकार निज आत्मा की ओर नित्य वृद्धिगत भावना ही निर्जरा है ।।१।।

निर्जरा राग का नाश करनेवाली और वैराग्य को उत्पन्न करनेवाली है। यह आनन्द को उत्पन्न करनेवाली माँ और साधक जीवों की जीवन-संगिनी प्रिय पत्नी है। यह निर्जरा तप और त्याग, सुख और शान्ति का विस्तार करनेवाली है, संसाररूप महासागर से पार उतारनेवाली नौका है ।।२।।

आत्मज्ञान और आत्मध्यान के बिना होनेवाली सविपाक या अकाम निर्जरा किसी भी काम की नहीं है; नाममात्र की निर्जरा है, उसका मात्र नाम ही निर्जरा है; वह निर्जरातत्त्व या निर्जराभावना नहीं है। आराधकों के काम की तो एकमात्र अविपाकनिर्जरा ही है, जो ध्रुवधाम निज भगवान आत्मा की आराधना से उत्पन्न होती है और कर्मबन्ध का विध्वंस करनेवाली है ।।३।।

जो जीव इस सत्य को जानते हैं, पहिचानते हैं; वे ही विवेकी हैं, वे ही धन्य हैं; क्योंकि ध्रुवधाम निज भगवान के आराधकों की बात ही कुछ और होती है, गजब की होती है। निर्जराभावना का सार शुद्धात्मा की साधना ही है और ध्रुवधाम निज भगवान आत्म की आराधना ही आराधना का सार है ।।४।।

निर्जराभावना

(३३)

शुद्धातमा की रुची संवर साधना है निर्जरा।
ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना है निर्जरा॥
निर्मम दशा है निर्जरा निर्मल दशा है निर्जरा।
निज आतमा की ओर बढ़ती भावना है निर्जरा॥१॥

(३४)

वैराग्यजननी राग की विध्वंसनी है निर्जरा।
है साधकों की संगिनी आनन्दजननी निर्जरा॥
तप-त्याग की सुख-शान्ति की विस्तारनी है निर्जरा।
संसार पारावार पार उतारनी है निर्जरा॥२॥

(३५)

निज आतमा के भान बिन है निर्जरा किस काम की।
निज आतमा के ध्यान बिन है निर्जरा बस नाम की॥
है बंध की विध्वंसनी आराधना ध्रुवधाम की।
यह निर्जरा बस एक ही आराधकों के काम की॥३॥

(३६)

इस सत्य को पहिचानते वे ही विवेकी धन्य हैं।
ध्रुवधाम के आराधकों की बात ही कुछ अन्य है॥
शुद्धातमा की साधना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४॥

लोकभावना

षट्द्रव्यमय और तीन लोक वाले इस लोक में यह आत्मा आत्मा के ज्ञान बिना भ्रमरूपी रोग के वश होकर भव-भव में भ्रमण करता रहा; जगत के जंजाल में उलझानेवाली चार गतियों में निरन्तर घूमता ही रहा। समताभाव के अभाव में इस संसार में इसे रंचमात्र भी सुख प्राप्त नहीं हुआ ॥१॥

नरक, तिर्यञ्च, देव एवं मनुष्य गतियों में परिभ्रमण करते रहना ही संसार है। छह द्रव्यों वाले इस लोक में एक आत्मा ही सारभूत पदार्थ है। अपना आत्मा ही सार है, स्वाधीन है, सम्पूर्ण है, आराध्य है, सत्यार्थ है, परमार्थ है और परिपूर्ण है ॥२॥

अपना आत्मा ही काम, क्रोध, मान और मोह से रहित है। एक आत्मा ही निर्द्वन्द्व है, निर्दण्ड है, निर्ग्रन्थ और निर्दोष है। मिथ्यात्व और राग रहित भी वही है, प्रकाशस्वरूप चैतन्यलोक भी वही है। यदि गहराई से विचार किया जाये तो जिसमें सम्पूर्ण लोक झलकते हैं, वह ज्ञान-स्वभावी आत्मा ही वास्तविक लोक है ॥३॥

अपना आत्मा ही लोक है और अपना आत्मा ही सारभूत पदार्थ है। आनन्द को उत्पन्न करनेवाली इस लोकभावना के चिन्तन का एकमात्र आधार निज भगवान आत्मा ही है। यह जानना-पहिचाना ही लोकभावना के चिन्तन का सम्पूर्ण सार है; और ध्रुवधाम निज भगवान आत्मा की आराधना ही आराधना का सार है ॥४॥

लोकभावना

(३७)

निज आतमा के भान बिन षट्द्रव्यमय इस लोक में।
भ्रमरोगवश भव-भव भ्रमण करता रहा त्रैलोक्य में॥
करता रहा नित संसरण जगजालमय गति चार में।
समभाव बिन सुख रञ्च भी पाया नहीं संसार में॥१॥

(३८)

नर नर्क स्वर्ग निगोद में परिभ्रमण ही संसार है।
षट्द्रव्यमय इस लोक में बस आतमा ही सार है॥
निज आतमा ही सार है स्वाधीन है सम्पूर्ण है।
आराध्य है सत्यार्थ है परमार्थ है परिपूर्ण है॥२॥

(३९)

निष्काम है निष्क्रोध है निर्मान है निर्मोह है।
निर्द्वन्द्व है निर्दण्ड है निर्ग्रन्थ है निर्दोष है॥
निर्मूढ है नीराग है आलोक है चिल्लोक है।
जिसमें झलकते लोक सब वह आतमा ही लोक है॥३॥

(४०)

निज आतमा ही लोक है निज आतमा ही सार है।
आनन्दजननी भावना का एक ही आधार है॥
यह जानना पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४॥

बोधिदुर्लभभावना

पंचेन्द्रियों के भोग एवं उन्हें भोगने की भावना का प्राप्त होना दुर्लभ नहीं, सुलभ ही है; पर आत्मा को जानना, पहिचानना एवं आत्मा की साधना और आराधना महादुर्लभ है ।।१।।

मनुष्यभव की प्राप्ति होना, उत्तम आर्य देश में जन्म होना, परिपूर्ण आयु की प्राप्ति होना, न्यायोपात्त अहिंसक आजीविका के साधन उपलब्ध होना, दुर्वासनाओं का मन्द होना, धर्मानुकूल परिजनों की प्राप्ति होना, सत्य पदार्थ और सज्जनों की संगति प्राप्त होना, सद्धर्म की आराधना के भाव होना एवं आत्मा की साधना करने की वृत्ति होना क्रमश: एक से एक महादुर्लभ हैं ।।२।।

पर एक बात यह भी तो है कि जब मैं स्वयं ही ज्ञेय हूँ और मैं स्वयं ही ज्ञान हूँ; जब मैं स्वयं ही ध्येय हूँ और मैं स्वयं ही ध्यान भी हूँ; इसी प्रकार जब मैं स्वयं ही आराध्य हूँ और मैं स्वयं ही आराधना भी हूँ तथा जब मैं स्वयं ही साध्य हूँ और साधना भी मैं स्वयं ही हूँ ।।३।।

जब निज को जानना, पहिचानना एवं निज की साधना, आराधना ही बोधि है; तो फिर बोधि की आराधना दुर्लभ कैसे हो सकती है ? सुलभ ही समझना चाहिए। अतः बोधिदुर्लभभावना का सार निजतत्त्व को पहिचानना ही है और ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना ही आराधना का सार है ।।४।।

बोधिदुर्लभभावना

(४१)

इन्द्रियों के भोग एवं भोगने की भावना।
हैं सुलभ सब दुर्लभ नहीं है इन सभी का पावना॥
है महादुर्लभ आत्मा को जानना पहिचानना।
है महादुर्लभ आत्मा की साधना आराधना॥१॥

(४२)

नरदेह उत्तमदेश पूरण आयु शुभ आजीविका।
दुर्वासिना की मंदता परिवार की अनुकूलता॥
सत् सज्जनों की संगती सद्धर्म की आराधना।
है उत्तरोत्तर महादुर्लभ आत्मा की साधना॥२॥

(४३)

जब मैं स्वयं ही ज्ञेय हूँ जब मैं स्वयं ही ज्ञान हूँ।
जब मैं स्वयं ही ध्येय हूँ जब मैं स्वयं ही ध्यान हूँ॥
जब मैं स्वयं आराध्य हूँ जब मैं स्वयं आराधना।
जब मै स्वयं ही साध्य हूँ जब मैं स्वयं ही साधना॥३॥

(४४)

जब जानना पहिचानना निज साधना आराधना।
ही बोधि है तो सुलभ ही है बोधि की आराधना॥
निज तत्त्व को पहिचानना ही भावना का सार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४॥

धर्मभावना

अपनी आत्मा को जानना, पहिचानना ही धर्म है। इसीप्रकार अपनी आत्मा की साधना, आराधना भी धर्म है। आराधना का मर्म निज आत्मा की साधना ही है। निज आत्मा की ओर बढ़ती हुई भावना ही धर्म-भावना है ॥१॥

कामधेनु और कल्पवृक्ष नाममात्र के ही संकटहरण हैं। जिसे कोई चाह नहीं है, उसे चिन्तामणी रत्न भी किस काम के हैं? यद्यपि इनसे भोगसामग्री उपलब्ध हो जाती है; पर बिना माँगे नहीं, याचना करना अनिवार्य है और माँगने को तो मरने से भी बुरा कहा गया है। अतः इनकी चाह करना व्यर्थ ही है ॥२॥

धर्म एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिससे याचना की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसीप्रकार धर्म ही ऐसा चिन्तामणी रत्न है, जिससे कुछ चाहना नहीं पड़ता। धर्मरूपी कल्पवृक्ष से माँगे बिना ही कामनाएँ पूर्ण होती हैं अथवा कामनाएँ ही समाप्त हो जाती हैं। शुद्धात्मा की साधना ही सच्चा धर्म चिन्तामणि है, जिससे बिना चिन्तन के ही सर्व चिन्ताएँ समाप्त हो जाती हैं ॥३॥

आध्यात्मिक जीवन का आधार एक शुद्धात्मा की साधना ही है, शुद्धात्मा की साधना ही धर्मभावना का या बारहभावनाओं का सार है। वैराग्योत्पादक धर्मभावना या बारह भावनाओं का एक मात्र आधार निज शुद्धात्मा ही है और ध्रुवधाम निज भगवान की आराधना ही आराधना का सार है ॥४॥

धर्मभावना

(४५)

निज आतमा को जानना पहिचानना ही धर्म है।
निज आतमा की साधना आराधना ही धर्म है॥
शुद्धातमा की साधना आराधना का मर्म है।
निज आतमा की ओर बढ़ती भावना ही धर्म है॥१॥

(४६)

कामधेनु कल्पतरु संकटहरण बस नाम के।
रतन चिन्तामणि भी हैं चाह बिन किस काम के॥
भोगसामग्री मिले अनिवार्य है पर याचना।
है व्यर्थ ही इन कल्पतरु चिन्तामणी की चाहना॥२॥

(४७)

धर्म ही वह कल्पतरु है नहीं जिसमें याचना।
धर्म ही चिन्तामणी है नहीं जिसमें चाहना॥
धर्मतरु से याचना बिन पूर्ण होती कामना।
धर्म चिन्तामणी है शुद्धातमा की साधना॥३॥

(४८)

शुद्धातमा की साधना अध्यात्म का आधार है।
शुद्धातमा की भावना ही भावना का सार है॥
वैराग्यजननी भावना का एक ही आधार है।
ध्रुवधाम की आराधना आराधना का सार है॥४॥

लेखक के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

१.	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व [हिन्दी]	११.००
२.	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ [हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी]	६.००
३.	धर्म के दशलक्षण [हि., गु., म., क., तमिल, अंग्रेजी]	६.००
४.	क्रमबद्धपर्याय [हि., गु., म., क., त.]	४.००
५.	सत्य की खोज [हि., गु., म., त., क.]	६.००
६.	जिनवरस्य नयचक्रम्	५.००
७.	बारह भावना : एक अनुशीलन	५.००
८.	बारह भावना	१.२५
९.	आप कुछ भी कहो	३.००
१०.	मैं कौन हूँ ? [हि., गु., म., क., त., अंग्रेजी]	१.२५
११.	युगपुरुष श्री कानजी स्वामी [हि., गु., म., क., त.]	२.००
१२.	तीर्थंकर भगवान महावीर [हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, असमी, तेलगु, अंग्रेजी]	०.५०
१३.	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका [हिन्दी]	४.००
१४.	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य [हि., गु.]	०.६५
१५.	अर्चना (पूजन संग्रह) [हिन्दी]	०.५०
१६.	गोम्मटेश्वर बाहुबली	०.४०
१७.	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर [हि., गु.]	०.२५
१८.	चैतन्य चमत्कार	१.००
१९.	बालबोध पाठमाला भाग २ [हि., गु., म., क., त., बं., अं.]	१.००
२०.	बालबोध पाठमाला भाग ३ [हि., गु., म., क., त., बं., अं.]	१.००
२१.	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १ [हि., गु., म., क., अं.]	१.००
२२.	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग २ [हि., गु., म., क., अं.]	१.२५
२३.	वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग ३ [हि., गु., म., क., अं.]	१.२५
२४.	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ [हि., गु., म., क., अंग्रेजी]	१.२५
२५.	तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ [हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी]	१.४०

डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल का नाम आज जैन समाज के उच्चकोटि के विद्वानों में अग्रणीय है। ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी वि॰ सं॰ १९९२ तदनुसार शनिवार दि॰ २५ मई, १९३५ ई॰ को ललितपुर (उ॰प्र॰) जिले के बरौदास्वामी ग्राम के एक धार्मिक जैन परिवार में जन्मे डॉ॰ भारिल्ल ने शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न तथा एम॰ ए॰ करने के उपरान्त 'पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व' विषय पर शोध कर इन्दौर विश्व-विद्यालय, इन्दौर से पीएच॰डी॰ की उपाधि [illegible] भी विद्यावाचस्पति, वाणीविभूषण, जैनरत्न आदि अनेक उपाधियों से समय-समय पर आपको विभूषित किया गया है।

सरल, सुबोध, तर्कसंगत एवं आकर्षक शैली के प्रवचनकार डॉ॰ भारिल्ल आज सर्वाधिक लोकप्रिय आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं। उन्हें सुनने देश-विदेश में हजारों श्रोता निरन्तर उत्सुक रहते हैं। आध्यात्मिक जगत में ऐसा कोई घर न होगा जहाँ प्रतिदिन आपके प्रवचनों के कैसिट न सुने जाते हों तथा आपका साहित्य उपलब्ध न हो। धर्मप्रचारार्थ आप अनेक बार विदेश यात्रायें भी कर चुके हैं।

जैन जगत में सर्वाधिक पढ़े जानेवाले डॉ॰ भारिल्ल ने अब तक छोटी-बड़ी २७ पुस्तकें लिखी हैं और अनेक ग्रन्थों का सम्पादन किया है, जिनकी सूची अन्दर प्रकाशित की गई है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अब तक आठ भाषाओं में प्रकाशित आपकी कृतियाँ १३ लाख से भी अधिक की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुकी हैं।

सर्वाधिक बिक्रीवाले जैन आध्यात्मिक मासिक वीतराग-विज्ञान (हिन्दी, मराठी) एवं आत्मधर्म (तमिल एवं कन्नड़) के आप सम्पादक हैं। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं उसके द्वारा संचालित वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति एवं कुन्दकुन्द कहान दि॰ जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट द्वारा संचालित प्रकाशन विभाग तथा श्री टोडरमल दि॰ जैन सिद्धान्त महाविद्यालय आदि जयपुर में संचालित तत्त्वप्रचार सम्बन्धी गतिविधियों के सूत्रधार एवं प्राण आप ही हैं।

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के आप अनन्यतम शिष्य हैं एवं उनके द्वारा सम्पन्न आध्यात्मिक क्रान्ति में आपका अभूतपूर्व योगदान है। उनके मिशन की जयपुर से संचालित समस्त गतिविधियाँ आपकी सूझ-बूझ एवं सफल संचालन का ही सुपरिणाम हैं।